अध्याय 2

हिंदी का विकासात्मक स्वरूप

2.1 हिंदी की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

भारत का उत्तर और मध्य देश बहुत समय पहले से हिंदी–क्षेत्र नाम से जाना जाता है। हिंदी–प्रयोग क्षेत्र के विस्तृत होने के कारण अध्ययन सुविधा के लिए उसे विविध वर्गों में विभक्त किया गया है। जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने हिंदी के मुख्य दो उपवर्ग बनाए हैं – (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी। उन्होंने बिहारी को अलग भाषा के रूप में व्यवस्थित किया है। हिंदी भाषा के ऐतिहासिक और स्त्रोत–आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश की शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस शाखाओं से हिंदी का विकास विविध क्षेत्र में हुआ है। इसे मुख्यतः पाँच उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. पश्चिमी हिंदी, 2. पूर्वी हिंदी, 3. बिहारी हिंदी, 4. राजस्थानी हिंदी, 5. पहाड़ी हिंदी।

1. पश्चिमी हिंदी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र–विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यतः पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

(क) कौरवी – प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी–बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी–बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी–बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ भाषाविदों का कहना है कि खड़ी–पाई (आ की मात्रा 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी–बोली नाम पड़ा है। वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ. प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ :

1. क्रिया रूप अकारांत होता है; यथा– आना, खाना, दौड़ना, फैलना और खींचना आदि।
2. कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।
3. कहीं–कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का प्रयोग मिलता है।
4. इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।
5. अरबी और फारसी के शब्द यत्र–तत्र मिलते हैं।

वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

(ख) ब्रजभाषा : ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त साहित्य रचा गया है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यतः रचना होती थी। रीतिकाल ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वीकृति मिली थी। विशेष महत्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगत वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है। इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है। इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं –

1. पद–रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है; जैसे – खाया > खायौ > गया > गयो या गयौ।
2. बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है; यथा– लोग > लागन; बात > बातन।
3. 'उ' विपर्यय रूप मिलता है; जैसे – कुछ > कछु।
4. संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं – मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो आदि।
5. तद्भव शब्दों की बहुलता है।
6. वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। इसके प्रमुख कवि हैं – सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण और रसखान आदि। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

(ग) हरियाणवी – इसे बाँगरू या हरियानी नाम भी दिया जाता है। किन्तु जब हरियाणवी ही सर्वप्रचलित और मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती है। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

1. केन्द्रीय हरियाणवी –इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्रायः इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारा 'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ळ' विशेष ध्वनि सुनाई देती है; यथा– बालक > बाळक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता –
2. ब्रज हरियाणवी – फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के हरियाणा के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है; यथा– खायौ, खायोः गयो, गयो; नाच्यो, नाच्यौ आदि। 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है– काला > कारा, बिजली > बिजुरी आदि।
3. मेवाती हरियाणवी : मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।
4. अहीरवाटी हरियाणवी – रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ है। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी (बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है; यथा– था > थो।
5. बागड़ी हरियाणवी – इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणवी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान

सकते हैं। बहुवचन रचन में ओं प्रत्यय का योग मिलता है; यथा– बात > बातॉं। लोप का बहुल रूप सामने आता है; जैसे– अहीर > हीर, अनाजठाना, नाज, उठाना।

6. कौरवी हरियाणवी – कौरवी क्षेत्र से जुड़ें हरियाणवी के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता है। आकारांत शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है; यथा– खाना, धोना, सोना आदि।

7. अबदालवी हरियाणवी –अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है; यथा– हाथ > हात, साथ > सात। लोप की बहुलता भी दिखाई देती है – कृपया > कृप्या, मिनट > मिन्ट।

(घ) कन्नौजी – कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ है। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहॉंपुर, पीलीभीत हैं। इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य हैं। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

(ङ) बुंदेली –बुंदेलखण्ड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गई है। इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

2. पूर्वी हिंदी

पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी–दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवॉं आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियॉं हैं–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधि : 'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है।

इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं –

1. इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है– शंकर > संकर, शाम > साम आदि।

2. इसमें 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है; जैसे वन > बन, वाहन > बाहन आदि।

3. 'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है।

   इ आगम–स्कूल > इस्कूल, स्त्री > इस्त्री

   उ आगम–सूर्य > सूरज झ सूरूजु

   'ण' ध्वनि के स्थान पर प्रायः 'न' का प्रयोग होता है।

   ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

   भक्तिकाल में समृद्ध साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और जायसी कृत 'पद्‌मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य–धारा के सभी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया। समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ख) बघेली – इस बोली का केन्द्र रीवाँ है। मध्य प्रदेश के दगोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है।

(ग) छत्तीसगढ –'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसमें कहीं–कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है। अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रवृति विशेष रूप से मिलती है। समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

3. बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्‌भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलग वर्ग में व्यवस्थित किया है। ये भाषाएँ आकार बहुल हैं। बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है; यथा– लोग > लागनि, लोगन

सर्वनाम के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं – तोहनी हमनी आदि।

बिहारी की अनेक प्रवृत्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं – इससे मुख्यतः तीन बोली भागो में विभक्त करते हैं।

(क) भोजपुरी – भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में अवधि की कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इसमें 'र' ध्वनि का प्रायः लोप हो जाता है; यथा– लरिका > लरका (लड़का), करया > कइया (काला) 'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है; जैसे– खाइल, चलल, पाइल आदि। इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है। समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ख) मैथिली – मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है। इसमें शब्द स्वरांत होते हैं। इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप में प्रयुक्त होता है। इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं; यथा – छथि, छल आदि।

इ, उ बहुला रूप अवधि के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दावली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्कृत ज्ञान का परिचायक है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य और आकर्षक साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

(ग) मगही – 'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है। इसमें सहायक 'हल्' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते हैं।

क्रारक–चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते हैं; यथा–संप्रदान–ला, लेन, आधकरण–माँ। शब्दों में तद्‌भव या बहुल तद्‌भव रूप मिलते हैं; यथा– बच्चे के लिए 'बुतरू' का प्रयोग। उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

4. राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। इसमें टवर्गीय वनियों की प्रधानता होती है; यथा – ड, ड़, ण, ळ ।

महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने के की भी प्रवृत्ति है।

बहुवचन परिवर्तन में मुख्यतः 'आँ' का प्रयोग होता है।

तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है।

राजस्थानी में एक ओर वीर रस की ओजप्रधान रचनाएँ मिलती हैं, तो श्रृंगार रासो, दूहा काव्य–ग्रंथों की रचना हुई है। इसमें समृद्ध साहित्य और लोक–साहित्य सृजन क्रम चल रहा है। राजस्थानी में चार प्रमुख बोलियों के रूप मिलते हैं – मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

(क) मेवाती– मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर–पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारा इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवाती में समृद्ध लोक–साहित्य है।

(ख) जयपुरी– इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसगों में कर्म–संप्रदान–नै, कै; करण–अपादान–सूं, सौ; अधिकरण–मैं, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ग) मारवाड़ी– इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध कवि नरपति नाल्ह, चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं।

इसमें 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है।

अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग।

तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

(घ) मालवी – मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

हिंदी और उसका विकास

इसमें 'ड' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है।

इसमें 'ण' ध्वनि नहीं है।

विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

5. पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्‌भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथलता के कारण भाषा में विविधता का होना निश्चित रहा। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है– पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

(क) पश्चिमी पहाडी – इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती हैं। यहाँ की बोलियों की संख्या तीन से अधिक है। ये मुख्यतः टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है।

(ख) मध्य पहाड़ी– नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते हैं। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य और संक्षिप्त–साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

6. दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्‌भव शब्द है। आर्यों का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया है। हिंदी साहित्य के इइतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजरात और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में हिंदी दक्षिण के प्रांतों में आर्कषक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय में दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है।

उद्‌भव–विकास : चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद–बिन–तुगलक था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद–बिन–तुगलक के जाने से पूर्व निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी–संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि अवश्य मिली, किंतु इससे दक्षिण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी–बोली, ब्रज, अवधी, पंजाबी आदि के मिश्रित के रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंदी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में डॉ0 परमानंद पांचाल का कथन इस प्रकार है–

''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आसपास की हरयाणवी एवं खड़ी–बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात् तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है। ''डॉ0 श्रीराम शर्मा के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्‌भव विकास हुआ है।

इसमें अव्यय शब्द 'और' के स्थान पर 'होर' का प्रयोग होता है।

नकारात्मक शब्द 'नहीं' के लिए 'नक्को' का प्रयोग होता है।

विविध भारतीय भाषाओं के तत्सम और तत्सम शब्दों के साथ अरबी, फारसी शब्दों का प्रभावी प्रयोग मिलता है। शब्द रूप में पर्याप्त विविधता मिलती है; यथा– एक > येक, यकी, > यक्की, इक आदि।

दक्खिनी हिंदी का भाषायी स्वरूप, भक्ति का तीन संत काव्य की भाषा से बहुत कुछ मेल खाता है –

''वे अरबी बोल न जाने,
न फारसी पछाने
यूँ देखत हिंदी बोल
पन मानी है नफ्तोल
मीराँजी शम्सुल उश्शाक्
''ऐब न राखे हिंदी बोल,
माने तो चख देख घंडोल।''

– शेख बुराहानुद्दीन जानम

तुलना –

''लूंचत मूंडत फिर फोकट तीरथ करे या हज।
थान देख जे मान भई मूरख भज।''

–मीराँजी शम्सुल उश्शाक

''मूड़ मड़ाइ हरि मिले, तो सब कोउ लेठ मुड़ाय।
बार–बार के मूड़ते भेड़ न बैकुंठ जाय।।''

– कबीर

दक्खिनी हिंदी में समृद्ध साहित्य है। इसके कुछ प्रतिनिधि साहित्यकार हैं – उश्शाक, शेख बुराहानुद्दीन जानम, काजी महमूद बहरी, गुलाम अली, और मुहम्मद अमीन आदि।

निश्चय ही दक्खिनी हिंदी में हिंदी भाषा का एक विषेश स्वरूप है और इसमें समृद्ध साहित्य है। इसलिए हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के इतिहास में दक्खिनी हिंदी का महत्व स्वतः सिद्ध है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छः भागों– पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्हीं दो वर्गों की अवधी और ब्रज दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य–रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य–सृजन में अपनाई जाती रही है और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है। जायसी ने 'पदमावत्' की रचना ठेठ अवधी में की है। 'प्रमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्तिकाल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

1. पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ–मागधी से हुआ।
2. पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं– कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ हैं – अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
3. पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र–तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।
4. पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।
5. पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा–बालक > बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती ह।
6. पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है; यथा– और > क अउर ऐनक > अइनक। पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।
7. पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा–कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा–केला > केरा, फर > फल आदि। पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।
8. पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्रायः 'स' के रूप में प्रयुक्त होी है; यथा– शंकर > संकर, शेर > सेर। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।
9. पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है; यथा – वन > बन, आशर्वाद > आसीर्वाद आदि। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।
10. पूर्वी हिंदी में कारक–चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।
11. पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हमस ब' प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी हिंदी में प्रायः एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।
12. पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र–तत्र 'ब' का प्रयोग होता है– चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकर रूप सामने आता है– चलना > चलनों, करना > करनो।
13. क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारा में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किंतु पूर्वी हिंदी में रूप–विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियों की शब्द–संपदा में बहुत कुछ समानता है, वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द–संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियों की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप–भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्व स्वतः सिद्ध है।

2.5 मानक हिंदी का स्वरूप

रूप–अध्ययन के समय आचार्य यास्क कृत निरूक्त में नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात की चर्चा की गई है– ''चत्वरि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपातश्च। ''नाम के अंतर्गत संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण, अख्यत के अंतर्गत क्रिया का अध्ययन किया जाता है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया शब्दों को अर्थ तत्त्व की संज्ञा दी जाती है।

इन्हें मूल शब्द का भी नाम दिया जाता है। इन शब्दों को वाक्य में प्रयोग के लिए विविध उपसर्ग तथा प्रत्ययों को प्रयोग किया जाता है। रूप परिवर्तन की प्रक्रिया में उपसर्ग तथा प्रत्यय की बहुकोणीय भूमिका होती है। इस दिशा में कारक व चिह्नों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है।

हिंदी भाषा में समय, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार रूप प्रक्रिया के अवयवों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। ऐसे अवयवों में यदि कुछ परंपरागत स्वरूप मिलता है, तो बहुत कुछ नवीनता भी दिखाई देती है।

(अ) उपसर्ग

रूप–रचना प्रक्रिया में जिन अक्षर या अक्षर–समूह का प्रयोग शब्द के पूर्व किया जाता है, उन्हें उपसर्ग यह पूर्वसर्ग नाम दिया जाता है; यथा–आचार्य में 'प्र' उपसर्ग लगाकर प्राचार्य की रचना होती है। उपसर्ग के प्रयोग से शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यथा– आचार्य का अर्थ है– शिक्षक तो प्राचार्य का अर्थ है –मुख्य या प्रधान शिक्षक। हिंदी उपसर्गों को निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

1. तत्सम उपसर्ग – साहित्यिक हिंदी में परंपरागत तत्सम शब्दों के साथ तत्सम, उपसर्गों का प्रयोग कर अनुकूल रूप–रचना की जाती है। संस्कृत के प्र, परा, अप, सम, अनु, अब, स, निर, दुस, दूर, वि, अधि, अपि, शु, कल, अभि, प्रति, परि, उप आदि के यत्र–तत्र प्रयोग मिलते हैं। इनका अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता किंतु शब्द का साथ पाकर विशेष अर्थ देते हैं। ना ही उनका अर्थ होता है; यथा–सुगंध > सु+गंध = अनुकूल या मनभावन गंध। निर्जन निर+जन = जहाँ कोई न हो अर्थात् जनरहित। उपसर्ग को अव्यय की कोटि में रखा जाता है, क्योंकि इनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

2. तद्भव उपसर्ग –हिंदी की रूप–रचना में संस्कृत के उपसर्ग परिवर्तित होकर भी प्रयुक्त होते हैं। इनकी अर्थ अभिव्यक्ति की शक्ति और प्रयोग तत्सम उपसर्ग के ही समान हैं। ऐसे उपसर्गों का प्रयोग प्रायः तद्भव शब्दों के साथ लगता है। हिंदी के कुछ प्रमुख तद्भव उपसर्ग द्रष्टव्य हैं–

   अ– यह उपसर्ग तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों में भी लगता है; यथा –

   थाह > अ +थाह = अथाह

   जान > अ+जान = अजान

   अन– यह 'अ' के स्थान पर प्रयुक्त किया जाने वाला उपसर्ग है–

   कही > अन+कही = अनकही

   थक > अन+थक = अनथक

   मोल > अन+मोल = अनमोल

   अध– यह संस्कृत अर्ध से परिवर्तित हुआ उपसर्ग है –

   पका > अध+पका = अधपका

   खिला > अध + खिला = अधखिला

   कपार > अध + कपार = अधकपार

   औ– यह तत्सम उपसर्ग 'अव' से परिवर्तित हो कर बना है। इसका प्रयोग ही उए 'बुरा' अर्थ में किया जाता है। इस उपसर्ग के प्रयोग से जो रूप रचना होती है वह अपकर्ष अर्थ देने लगता है; यथा –

गुन > औ + गुन = औगुन

घट > औ + घट + औघट

दु– इसका प्रयोग संस्कृत के दुर उपसर्ग के स्थान पर उसके अर्थ में किन्तु तद्भव शब्दों में साथ किया जाता है; यथा –

बली > दु + बली + दुबली

काल > दु + काल = दुकाल

नि– यह संस्कृत के उपसर्ग निर् से परिवर्तित हो कर बना है। यह उसी अर्थ में प्रयुक्त भी होता है।

डर > नि + डर = निडर

पूता > नि + पूता = निपूता

3. विदेशी उपसर्ग – भारत पर एक लम्बे समय से विदेशियों का शासन रहा है। उनकी भाषा यहाँ की राजभाषा या धर्म भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है। इस कारण उन विदेशी भाषाओं के विविध प्रभावों में उपसर्ग प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। इस उपसर्ग का प्रयोग विदेशी भाषा के शब्दों के साथ परम्परागत शब्दों के साथ भी होता रहा है। विदेशी उपसर्गों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) अरबी–फारसी उपसर्ग

कम (थोड़ा)	–	कमजोर, कमसमझ
गैर (भिन्न)	–	गैरजिम्मेदार, गैरहाजिर
ना (नहित/अभाव)	–	नालायक, नापसंद
बद (बुरा)	–	बदमाश, बदनाम, बदतमीज,
बे (रहित/बिना)	–	बेईमान, बेरहम, बेकाम
हम (साथ)	–	हमदर्द, हमउम्र, हमसफर
हर (प्रत्येक)	–	हरदम, हरघड़ी, करकाम

(ख) अंग्रेजी उपसर्ग

वर्तमान समय की हिंदी में अंग्रेजी के उपसर्गों से भी रूप–संरचना का निर्धारण किया जाता है। इन उपसर्गों का प्रयोग मुख्यतः अंग्रेजी शब्दों के साथ होता है किंतु यदा–कदा परंपरागत हिंदी शब्दों के साथ भी किया जाता है।

सब	–	सब–इंस्पेक्टर, सब–ओवरसियर
हेड	–	हेड मास्टर, हेड पादरी

रूप–संरचना की प्रक्रिया में उपसर्गों की विशेष भूमिका होती है। इससे विविध भावों की अभिव्यक्ति को दिशा मिलती है।

उपसर्गों के प्रकार्य–हिंदी रूप–संरचना में उपसर्ग की विशेष भूमिका होती है। इनके द्वारा नवीन शब्दों की रचना, व्युत्पादन, अर्थद्योतन तथा संबंध, द्योतन की अनुकूल भूमिका सम्पन्न होना महत्वपूर्ण है। नए शब्दों के निर्माण से

भाषा–समृद्ध होती है; यथा –महां > महाद्वीप, महाधिवक्ता, सम > समकश, समतोल। वर्ग–विशेष के शब्द में परिवर्तन से व्युत्पादन कार्य समान होता है; यथा –

संज्ञा		विशेषण	क्रिया		विशेषण
अन–मेल	>	अनमेल	अ–टलना	–	अटल
दुर–मुख	>	दुर्मुख	अ–सहना	–	असह
बे–दद्र	>	बेदर्द	अन–पढ़ना	–	अनपढ़
ला–पता	>	लापता			

उपसर्ग के प्रयोग से विविध रूपों की रचना और विविध भावों को अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रत्यय– प्रत्यय के लिए परसर्ग नाम भी दिया जाता है। रूप की संरचना में प्रत्यय की विशेष भूमिका होती है। प्रत्यय उस अक्षर या अक्षर समूह को कहते हैं जो शब्द के अंत में लगता है। इसके प्रयोग से मूल शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। प्रत्येक भाषा में प्रत्यय की रचना होती है, किंतु सभी भाषाओं की प्रत्यय की प्रवृत्ति में भिन्नता होती है। हिंदी में संस्कृत के अनेक तत्सम प्रत्यय आ गए हैं, जो अनेक तद्भव बन गए हैं। विदेशी भाषा के प्रत्यय भी हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। अनेक विदेशी प्रत्यय तो परम्परागत शब्दों के साथ भी प्रयुक्त होते हैं। हिंदी में बहुल रूप से प्रयुक्त प्रत्ययों को निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) परम्परागत प्रत्यय

संज्ञावाची प्रत्यय –जिन प्रत्ययों के योग से संज्ञा रूप की संरचना होती है, उन्हें उसी आधार पर संज्ञावाची प्रत्यय कहते हैं। हिंदी में ऐसे प्रत्ययों का पर्याप्त रूप में प्रयोग होता है।

अक्कड़		>	पियक्कड़, बुझक्कड़, भुल्क्कड़।
अन्त	(–अन्त)	>	रटन्त, भिड़न्त, गढ़न्त।
आई	(–आपिका)	>	चढ़ाई, जुताई, पढ़ाई, तिलाई।
आपा	(–त्व)	>	रंडापा, बुढ़ापा, मोटापा।
आव	(–अभ्य)	>	घुमाव, छिड़काव, बचाव।
आगट	(–आप+वृति)	>	थकावट, बनावट, मिलावट, सजावट।
हाइट	(आप+वृति)	>	गड़गड़ाहट, घबराहट, थर्थराहट।
ईला		>	पथरीला, रंगीला, गंठीला।
औती	(–पत्री)	>	चुनौती, बपौती, मनौती
पन	(–त्व)	>	लड़कपन, गोरापन, गंवारपन।

(ख) विदेशी प्रत्यय – हिंदी में अरबी और फारसी के कुछ प्रत्यय ग्रहण कर लिए गए हैं। रूप–संरचना में इनका प्रयोग किया जाता है। बोलचाल की भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किंतु साहित्यिक हिंदी में विरल प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख प्रत्यय और उनसे आधारित रूप संरचना द्रष्टव्य है।

ई	–	खुश	>	खुशी
		नवाब	>	नवाबी
		दोस्त	>	दोस्ती
कार	–	जानना	>	जानकार
		पेश	>	पेशकार
		साहू	>	साहूकार
दानी	–	गोद	>	गोददानी
		मच्छर	>	मच्छरदानी
		चाय	>	चायदानी
दान	–	इत्र	>	इत्रदान
		पान	>	पानदान
		चाय	>	चायदान
खाना	–	छपाई	>	छपाईखाना
		डाक	>	डाकखाना
ची	–	मशाल	>	मशालची
		नकल	>	नकलची
बाज	–	पतंग	>	पतंगबाज
		कबूतर	>	कबूतरबाज
बंद	–	नजर	>	नजरबंद
		मोहर	>	मोहरबंद
		हथियार	>	हथियारबंद
साज	–	घड़ी	>	घड़ीसाज
		घोड़ी	>	घोड़ीसाज

2.2 काव्य भाषा के रूप में अवधीः का उद्‌भव और विकास

प्रत्येक युग की साहित्य भाषा और जन भाषा के स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता होती है। इसी प्रकार काव्य–भाषा और गद्य–भाषा में भी पर्याप्त अंतर होता है। वर्तमान समय में यह अंतर कुछ सिमटता जा रहा है। मध्ययुग की दोनों भाषाओं में यह भिन्नता स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने तो काव्य सृजन के लिए ब्रज को चुना तो गद्य के लिए खड़ी–बोली का चयन किया है। आधुनिक काल में यत्र–तत्र काव्य–भाषा के रूप बोलचाल के लिए निकट दिखाई देता है, किंतु काव्य भाषा और बोलचाल की भाषा में पद्धति के कारण सदा ही भेद रहेगा।

हिंदी भाषा की विविध बोलियों में अवधी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अवधी को भी ब्रज के ही समान भाषा की

संज्ञा दी गई है। ब्रज को जिस प्रकार ब्रजभाषा कहते हैं, उसी प्रकार अवधी को अवधी भाषा नाम से सम्बोधित किया जाता है। अवधी भाषा के रूप में प्रयोग करने के कारण 'अवधी बोली' मान लेना खटकता है। अवधी को भाषा नाम मिलने का कारण है कि इसमें पर्याप्त साहित्य की रचना हुई है और इसका व्याकरण भी निर्धारित हो चुका है। अवधी एकमात्र ऐसी बोली है जिसे भाषा के रूप में स्थान मिला ओर उसके साहित्यिक और ठेठ दो रूपों में साहित्यिक रचना हुई। इन दो रूपों को भक्तिकाल के दो प्रमुख महाकवियों ने काव्यभाषा के रूप में अपनाया है। भक्त शिरोमणि संत तुलसीदास ने अवधी के साहित्यिक रूप को अपनाया है, तो प्रेमाश्रयी काव्यधारा के सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी आदि ने अवधी के ठेठ रूप को अपनाया है। संत तुलसी की रचना 'रामचरित मानस' राजमहल से लेकर रंक की झोपड़ी तक ससम्मान पहुँच चुकी है, तो जायसी का पद्मावत महाकाव्य वित्रृत् वर्ग के मस्तिष्क पर छा चुका है।

अवधी बोली के प्रारम्भिक साहित्यिक प्रयोग का पुट प्राकृत अपभ्रंश के ग्रंथ 'राउटन बेल' और प्राकृत 'पैंगलग' में मिलता है। इसके आधार पर अवधी के साहित्यिक स्वरूप के प्रारंभ को बाहरवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य मान सकते हैं। खड़ी बोली के प्रथम कवि माने जाने वाले अमीर खुसरों की भाषा में अवधी की छाया देख सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार अमीर खुसरो का काल 1255 से 1324 ई0 है।

तरूवर से तिरिया उतरी, उनने बहुत रिझाया।

बाप का उसने नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।

आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।

अमीर खुसरो यो कहें, अपने नाम न बोली–निबोरी।

इन पंक्तियों में 'इक' विशेषण और उत्तरी क्रिया पदों में अवधी का संरचनात्मक स्वरूप दिखाई देता है। मुल्ला दाऊद की रचना 'चन्दयान' (1379 ई0) में अवधी बोली का साहित्यिक रूप मिल गया है। यह अवधी की प्रथम साहित्यिक रचना है। कुतुबन–कृत मृगावती (1503 ई0) दोहे और चौपाई छन्दों पर आधारित अवधी रचना है। यह सूफी काव्यधारा का श्रेष्ठ, सरल और सरस काव्यकृति है। मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत (1540 ई0) प्रमाश्री काव्यधारा की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अवधी भाषा का ही नहीं हिंदी साहित्य के चर्चित महाकाव्यों में से एक और प्रमुख ग्रंथ है। जायसी की भाषा में अपूर्व माधुर्य है। ठेठ भाषा का जैसा रूप जायसी ने हिंदी साहित्य के लिए अपनाया है, वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं अपनाया है।

सँवरौ आदि एक करतारू। जेहँ जिए दीन्ह कीन्ह संसारू।

कीन्हेसि प्रथम जोति परमासू। कीन्हेसि तेहि पिरीति कविसासू।।

कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतई रंग उरेहा।

कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू।

कीन्ह सबइ अस जाकर दोसरहि छाज न काहु।

पहिलेहि तेहिक नाऊँ लई कथा कहौं अवगाहु।।

इस पद्यांश में आदि, प्रथम पवन, जल आदि कुछ एक तत्सम शब्दों को छोड़कर अन्य शब्दों में ठेठ अवधी का रूप देख सकते हैं। इन पंक्तियों में इकार, आकार बहुला रूपों के साथ अनुनासिका का भी गहरा रंग दिखाई देता है। जायसी ने पद्मावत में फारसी पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य भाषा में विभिन्न पदों को विपरीत क्रम में प्रयोग किया है।

1. भौहें स्याम धनुकू जनु ताना।

   जासौं हेर मार बिख बाना।। – नखशिख खण्ड (102)

2. नैन बांक सरि पूज न कोऊ।

   मान समुंद्र आस उलथहिं दोऊ।। – नखशिख खण्ड (103)

इन पंक्तियों में 'स्याम भौंहें' और 'बांक नैन' न कहकर ''भौंहें स्याम'' और 'नैंन बांक' रूप में विपरीत क्रम से प्रयोग करने से भाषा में भावात्मक गम्भीर आ गई है। जायसी ने अवधी भाषा में भारतीय निर्गुण साधना की प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण में अपूर्व सफलता प्राप्त की है–

''मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।।''

''तनि चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।

मुरू सुआ जेहि पन्थ देखावा। बिन गुरू जगत को निरगुन पावा।

नागमती यह दुनिया–धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।

राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानु।

प्रेमकथा यहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु।।

जायसी ने भाषा और भाव के संबंध को स्पष्ट करते हुए प्रेम को भाषा की सरसता, दिव्यता और महत्ता के आधार रूप में स्वीकार किया है।

तुरकी अरबी हिन्दूई, भाषा जेती आहिं।

जेहिं महँ मारग प्रेमकर, सबै सराहैं ताहि।

ठेठ अवधि में रचित काव्य भाषा की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें उकार बहुत शब्दों का प्रयोग है। इस ध्वनि विशेष के बहुल प्रयोग से ध्वन्यात्मकता का विशिष्ट रंग उभरता है –

तपै लाग अब जेठ आसाढी। मैं मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।

तन तिनुवर भा झूरौं। मैं बिरहा आगरि सिर परी।

साँठि नाहिं लगि वात को पूँछा। बिनु जिय मएउ मूँज तन छूँछा।

बंध नहिं और बंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।

ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।

बरिसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन हाँहाँ।

कों रे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।

अबहू दिस्टि मया करू छन्हिन तनु घर आउ।

मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ।।

भगवती वियोग खण्ड–356

नागमती वियोग खण्ड के बारहमासा संदर्भ में जायसी ने झूरौं, पूँछा, मूँज, दूबरि, बिहूनी, धूली, अबहू शब्दों का चयन

ऊकार आधार पर किया। अवधी की मुख्य प्रवृत्ति इकार और बहुला रूप भी स्पष्ट रूप में देख सकते हैं –

इकार प्रयोग

छाजनि	तिनुबर	बिरहा	आगरि
सिर	नाहि	लगि	बिनु
जिय	नाहिं	केहि	ररि
दूबरि	बिहूनी	नाहिं	उठि
बरिसहि	चुअहिं	बिनु	बिनु
दिस्टि	छान्हिन	मंदिल	आनि।

उकार प्रयोग

तिनुवर	तिबनु	भएउ
चुअहिं	तुम्ह	बिनु
तुम्ह	बिनु	करू

जायसी ने जनभाषा का सहज प्रयोग किया है। इनकी भाषा कबीर की भाषा के समान तद्भव शब्द बहुला है। सूफी कवि ने दर्शन और आध्यात्म के संदर्भ को भी तद्भव शब्दावली में आकर्षक अभिव्यक्ति प्रदान की है –

नवौं पंवरि पर दसौं दूआरू। तेहि पर बाज राज धरिआरू।

घरी सो बैठि गनै घरिआरी। पहर पहर सो आपनि बारी।

बजहि घरी पूजी वह मारा। घरी–घरी घरिआर पुकारा।

परा जो डाडं जगत सब डाँडा। का निचिंत मांटी कर भांडा।।

मुहम्मद जीवन जन भरन रहँट धरी की रीति।

घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।।

– सिंहलदीप वर्णन खण्ड – 42

जायसी की सरल और सुगम भाषा में जीवन रहस्य को प्रकट करने की सराहनीय क्षमता थी। सहज चिन्तन और सीधी–सीधी भाषा में आकर्षक बिम्ब–विधान जायसी की अपनी विशेषता है। इनकी काव्य भाषा की अन्य रेखांकन योग्य विशेषता है – वाक्य में लघु आकारीय पदों की योजना और साथ ही उनका असामसिक रूप। सामासिक रूप इनकी काव्य–भाषा में अत्यंत विरल है। काव्य–भाषा का सरल और बोधगम्य रूप द्रष्टव्य है।

नैन जो देखे कँवल भरनिरमर नीर सरीर।

हंसत जो देख हंस दसन ज्योति नगहीर।।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि 'श' से 'स' (शरीर–सरीर) होना अवधी की सामान्य प्रवृत्ति है, जो तुलसी की काव्य भाषा में भी मिलती है, जबकि ल से (निर्मल–निमर), म से व (कमल–कवल) और अनुनासिक रूप (कँवल) जायसी काव्य भाषा की अपनी विशेषता है। भावानुकूल भाषा–योजना में जायसी का अपना आकर्षक स्थान है। जायसी ने ठेठ

अवनी के आधार पर हिन्दी साहित्य को चिरस्मरणीय रूप से समृद्ध किया है।

मंझनकृत मधुमालती (1545 ई0) अवधी का एक चर्चित प्रेमाख्यान काव्य है। इस रचना में प्रेम का गंभीर और एकोन्मुख रूप प्रस्तुत किया गया है। हिंदी के प्रेमाख्यान काव्यों में प्रायः बहु पत्नीवादी विचारधारा दर्शायी जाती है जबकि यह कृति इसके विपरीत सामने आती है। दोहा चौपाई में रची गई यह कृति सरसता और विशिष्ट चिन्तन के लिए चर्चित है।

आलमकृत माधवानल–कामकन्दला (1584 ई0) अवाधी में रचित मार्मिक प्रेमाख्यान काव्य है। इसमें अनेक जन्मों की प्रेम घटनाओं को समायोजित कर रचना को एक विशिष्ट रूप दिया गया है। चौपाईयों, दोहे अथवा सोरठे की योजना से काव्य को लयात्मकता और गेयता प्रदान की गई है।

उसमान गाजीपुरी कृत चित्रावली (1613 ई0) प्रेमाख्यान काव्य की रचना अवधी में की गई है। इस कृति में श्रृंगा के दोनों पक्षों के साथ अर्चना–पूजा, द्वन्द्व–संघर्ष और प्रेम सौन्दर्य आदि विभिन्न पक्षों का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस रचना में अवधी के परम्परागत प्रिय छनद, चौपाईयों, दोहे को आधार रूप में स्वीकार किया गया है। इस रचना का भाषायी स्वरूप सरल और प्रवाहमय होने से विशेष रोचक है।

पुहकरकृत रसखन (1618 ई0) में राजकुमारी रम्भा और सोम की प्रेमकथा है। यह प्रेमाख्यान सरल अवधी में रचा गया है। रचना अर्चना में सूफी काव्य–परम्परा का निर्वाह किया गया है। पहुकार ने इस रचना परंपरा के बहु प्रचलित छन्दों–चौपाई और दोहे को अपनाया है।

शेखनबी कृत ज्ञानदीप ने परंपरागत प्रेमाख्यानों से भिन्न रूप देने का प्रयत्न किया है। ज्ञानदीप ने अवधी में रचित इस कृति में श्रृंगार के दोनों पक्षों के साथ योग और वीर संदर्भों को समुचित स्थान दिया है। अवधी की रचना के विशेष चर्चा में होने का मुख्य तथ्य है कि मुसलमान होने पर भी शेखनबी ने उदार दृष्टि से वेद की भरपूर प्रशंसा की है। इस रचना में भी चौपाई और दोहे को अपनाया गया है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि जायसी आदि सूफी सन्त कवियों ने अवधी के ठेठ रूप को काव्य रचना में अपना कर इसे व्यापक, माधुर्ययुक्त और आकर्षक काव्य भाषा रूप देने का अनुकरणीय कार्य किया है। अवधी का दूसरा रूप जायसी आदि सूफी कवियों की भाषा से भिन्न है।

तुलसीदास कृत रामचरित्मानस अवधी के साहित्यिक स्वरूप के अप्रतिम रचना है। तुलसी ने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में सशक्त रचनाएँ की हैं। हिंदी के पूर्वी और पश्चिमी दोनों रूपों में उनका समान अधिकार था। तुलसीदास की अवधी में रचित अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं –

रामलालानहछु, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्नावली।

जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामचरित्मानस आदि।

तुलसी की भाषा में संस्कृत की कोमलकांत पदावली को प्रेरक रूप से स्थान मिला है। इसी कारण है कि तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधी को 'साहित्यिक अवधी' नाम दिया जाता है। तुलसीदास को संस्कृत भाषा पर भी प्रशंसनीय अधिकार प्राप्त था। रामभक्त सहृदय कवि ने रामचरित्मानस के प्रत्येक खण्ड के मंगलाचरण में संस्कृत भाषा में श्लोकों को निबद्ध किया है।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दो वाणीविनायकौ।।

नाना पुराणनिगमागमनसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतेऽपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाः
भाषा निबन्धमतिमजुलमातनोति।।

इस महाकाव्य का उपसंहार भी संस्कृत श्लोक से संस्कारित है। इस रचना की काव्य–भाषा हिन्दी में 'उपकार' बहुला रूप आद्योपान्त दिखाई देता है –

बदऊँ गुरू पटुम परागा। सुरूचि सुबास सरस अनुरागा।
अभिय भूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रज परिवारू।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही कै। मिटाहिं दोष दुख भव रजनी कं
सूझाहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जा जेहि खनिक।।

इन पंक्तियों के बदउँ, गुरू, पटुम, सुरूचि, सुबास, अनुरागा, रूप, उघरहिं दुःख, गुपुत पदों में 'उकार' का प्रयोग ध्वन्यात्मकता और लयात्मकता प्रदान कर रहा है।

अयोध्या काण्ड के प्रथम दोहे के विभिन्न पदों में 'उकार' के प्रयोग से साहित्यिक अवधी की लयात्मकता और भावगम्भीरता का गुरूतर होता स्वरूप द्रष्टव्य है –

श्रीगुरू चरन सरोज रज निज मनु मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुवर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि।।

अवधी में ह्रस्व स्वरों की प्रधानता होती है। 'उ' के साथ प्रयुक्त होने वाला ह्रस्य स्वर के प्रयोग से भाषा जहाँ सरलता गुण संजो लेती है वहीं भाषा में माधुर्यगुण भी अपने आकर्षक रूप में उभरता है।

निज इच्छाँ प्रभु अवरतइ सुर महि गो द्वित लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोच्छ सब त्यागी।।

(किष्किन्ध काण्ड–26)

इन पंक्तियों में निज, महि, द्विज में 'इ' का सामान्य प्रयोग है, तो अवरतइ (अवतार), लागि, (लगना), रहहि (रहना), त्यागि (त्याग) में अवधी का इकार स्वरूप है।

हिंदी साहित्य में चर्चित महाकाव्य रामचरित्मानस की काव्य–भाषा अवधी में 'श' व्यंजन के स्थान पर 'स' का प्रयोग प्रमुख भाषायी प्रवृत्ति के रूप में देख सकते हैं।

वोहि सुख लागि नारि तेहि सुख महु बेस कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन।।
सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जनसुमति।।

इस पद्यांश में सिव (शिव), लवलेस (लवलेश) और खगेस (खगेश) में 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग अवधी की

भाषायी प्रवृत्ति को प्रकट करता है।

रामचरित्मानस की काव्य–भाषा में 'व' के स्थान पर 'ब' और अनुनासिक बहुल भी रेखांकन योग्य है।

1. मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर विधि करि परिपोषू।

   चले बिपिल मुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी।।

2. सरल सुभाव मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ तम फिरि आर।

   मंटतु बहुरि लघु आई। सोकु सनेह न ह्रदयँ समाई।।

द्वितीय पद्यांश में मायँ, हियँ, मनहुँ, भेटहुँ और ह्रदयँ अनुनासिक स्वरूप उल्लेखनीय है। अवधी का प्रयोग अनेक काव्य–कृतियों में काव्य–भाषा के रूप में हुआ है, किंतु तुलसीदास कृत जगप्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित्मानस से अवधी को साहित्यिकता और लोकप्रियता के उच्चतम शिखर पर पहुँचने का अवसर मिला है।

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में अवधी का काव्य भाषा रूप बहुत कुछ सिमट गया है। कुछ कवियों की काव्य भाषा (ब्रज) में अवधी पुट मात्र दिखाई देता है। उदाहरणार्थ रीतिमुक्त कवि ठाकुर की रचना में यत्र–तत्र अवधी प्रवृत्ति देख सकते हैं।

भारतेन्दु युग में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी–बोली काव्यभाषा के रूप में उभरी है। इसी युग में अवधी को पुनः काव्यभाषा के रूप में अपनाया गया है। प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र मिश्र, जानकीप्रसाद ने अवधी में कुछ फुटकर रचनाओं को प्रस्तुत कर अवधी के आधुनिक युग के साहित्य का द्वार खोला है। इसके पश्चात् सीतला सिंह 'गहरवारधी', 'द्वारिका प्रसाद मिश्र', वंशीधर शुक्ल और चन्द्रभूषण त्रिवेदी, 'रमई काका' जैसे अनेक प्रमुख कवियों ने अवधी में श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'रमई काका' ने अवधी में भिनसार, बौछार, गुलछर्रा, फुहार और नेता जी आदि चर्चित रचनाओं का सृजन किया है। महाकवि तुलसीदास के पश्चात् रमई काका ने अवधी क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रियता अर्जित की है। इनकी हास्य–व्यंग्य प्रधान रचनाएँ विशेष चर्चित हैं।

हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अवधी काव्य–भाषा की समृद्ध परंपरा का विशेष योगदान है। अवधी काव्य–भाषा की दो धाराओं में महाकवि तुलसीदास और मलिक मुहम्मद जायसी का नाम शीर्षस्थ है। इन दो महान् साहित्यकारों की महाकाव्यात्मक कृतियाँ रामचरित्मानस और पद्यमावत् हिंदी साहित्य की चर्चित और अपूर्व धरोहर स्वरूप हैं।

2.3 काव्य के रूप में ब्रज भाषा का उद्भव और विकास

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी का विशेष स्थान है। हिंदी का महत्व उनके प्रयोक्ताओं की संख्या, विस्तृत भौगोलिक सीमा और समृद्धि के आधार पर है। हिंदी के विस्तीर्ण फलक पर प्रयोग होने के कारण इसे पूर्वी और पश्चिमी हिंदी मान से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी हिंदी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत ब्रज भाषा का अध्ययन किया जाता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रज निश्चय ही हिंदी की एक बोली है। इस पर गंभीर चिंतन करने से इसके साहित्यिक और महत्वपूर्ण भाषायी स्वरूप का ज्ञान होता है। इसकी साहित्यिक समृद्धि के कारण इसे 'ब्रजभाषा' की संज्ञा दी जाती है। 'ब्रज बोली' का प्रयोग स्वयं में खटकने वाला है। यहाँ यह चौंकाने वाला तथ्य है कि आज 'खड़ी–बोली' में साहित्यिक रचना की जाती है, किंतु इसे 'खड़ी भाषा' कोई नहीं कहता है, सभी खड़ी–बोली कहते हैं।

हिंदी में सबसे अधिक और समृद्ध साहित्य ब्रज में ही उपलब्ध है। काल और क्षेत्र की दृष्टि से भी ब्रज साहित्य का इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्य की सृष्टि के लिए इस भाषा का प्रयोग एक बहुत बड़े भू–भाग पर दीर्घकाल से होता है। कहा जा सकता है कि काव्य–भाषा के रूप में इसका प्रचार समस्त उत्तरी भारत में रहा

है। सोलहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा पर आधारित है। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक प्रारंभ सन् 1519 ई0 से मानते हैं। बल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के शिष्यों ने कृष्ण–भक्ति में विभोर होकर जो साहित्य सृष्टि की है वह ब्रजभाषा में ही है। सूरदास और अन्य अष्टछाप के कवियों ने ब्रज को साहित्य–भाषा का रूप प्रदान किया है।

ब्रजभाषा की रेखांकर योग्य कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. क्रिया, संज्ञा और विशेषणों में ओकारान्त/औकारान्त बहुल रूप।
2. कर्म तथा सम्प्रदान में को, कों, कौ कारक चिह्नों का प्रयोग।
3. सम्बन्ध कारक में मेरो, तेरो, हमरो, तिहारो आदि का प्रयोग।
4. निश्चयार्थक में के होहुतो, हुते का प्रयोग।
5. बहुवचन में 'न' प्रत्यय प्रयोग–चरनन, नैनन आदि।
6. उ का विपर्यय रूप में प्रयोग कुछ > कछु।

कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। इसकी ब्रजभाषा की भावभूमि पर माधुर्य का दिव्य रूप दिखाई देता है। सूरदास विरचित सुरसागर, सूर सरावली, साहित्य लहरी की परम निधि हैं। भक्त कवि अपने आराध्य की अर्चना करता हुआ कितना भाव–विभोर हो रहा है –

अवगति गति कछु कहत न आवै।
जयों गूंगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावैं।
सब विधि आगम विचारहिं ताते सूर सगुन–लीला पद गावैं।

कृष्ण की बालसुलभ क्रीड़ा का चित्रण अत्यंत मार्मिक और आकर्षक है –

मैया! मैं नाहि माखन खायो।
भोर भये गइयन के पीछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर वंशी वट भटक्यों सांझ परे घर आयो।
मैं बालक बहियन को छोटी छीको केहि विधि पायो।।

भ्रमरगीत का प्रसंग गोपी और उद्धव, हृदय और बुद्धि से व्यवहारिक संवाद को प्रस्तुत कर हृदय की विजय के साथ प्रेम के जीवनाधार होने का तथ्य प्रकट करता है। ब्रज भाषा के सहज प्रवाह में गोपियाँ कहती हैं –

ऊधौ मन नाही दस बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग को आराधै ईश।।

जिन लताओं के झुरमुट में गोपियों के साथ कृष्ण विचरण करते थे, आज कृष्ण के मथुरागमन पर वे गोपियों के लिए अत्यंत कष्टप्रद हो गई हैं। कृष्ण के वियोग में ये लताएँ अग्नि वर्षा करती हैं। सूर की ब्रज शब्दावली का मनोहारी रूप द्रष्टव्य है –

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लता लगत अलि सीतल ऊब भई विषम ज्वाल की पुंजै।

सूरदास की ऊपर प्रस्तुत पंक्तियों में ब्रजभाषा के प्रमुख अभिलक्षण इस प्रकार देख सकते हैं –

उ	बहुल रूप (विपर्यय)	–	कुछ	>	कछु
न	प्रत्यय बहुवचन	–	बांह	>	बहियन
			बैरी	>	बैरिन
ए > ऐ		–	पावे	>	पावै
			आवे	>	आवै
ो, आकार बहुल रूप		–	खाया	>	खायो
			मेरा	>	मेरो
			छोटा	>	छोटो
			छीका	>	छीको
			पाया	>	पायो
			गया	>	गयो
ौ, औकार बहुल रूप		–	उद्धव	>	ऊधौ
			लपटना	>	लपटायौ

अष्टछाप के द्वितीय भक्त कवि कुम्भनदास हैं। इनकी कोई स्वतंत्र रचना प्राप्त नहीं है। कृष्ण भक्ति इनके जीवन का लक्ष्य था। इसीलिए इन्होंने सीकर आमंत्रण को विरक्ति भाव से ठुकराते हुए कहा था –

भक्तजन को कहाँ सीकरी सो काम।

आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गये हरि नाम।।

परमानन्द दास ने ब्रजभाषा के माध्यम से प्रेम के पीर का हृदयस्पर्शी काव्य प्रस्तुत किया है। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं – परमानन्द सागर, दानलीला, परमानन्द के पद आदि।

ब्रज के विरही लोग विचारे।

बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन हारे।

परमानन्द स्वामी बिन ऐसे, ज्यों चन्दा बिनु तारे।।

कृष्णदास श्री वल्लभाचार्य के चतुर्थ शिष्य थे। गुजरात प्रांत में जन्मे कवि के आराध्य कृष्ण को अपने सर्वस्व रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने सुगम ब्रज भाषा में कृष्णभक्ति काव्य की रचना की है।

मो मन गिरधर छवि पर अटक्योउ।

कृष्णदास किया प्राण निछावर यह तनज ग सिर पटक्यो।।

नन्ददास की ब्रज भाषा में अनूठा माधुर्य भाव है। इनकी लेखनी से ब्रजभाषा की सुदामारचित, भंवरगीत, रसमंजरी, रूपमंजरी, मानमंजरी आदि कृतियों की रचना हुई है। ब्रजभाषा में किया गया रोचक कृष्ण–गान द्रष्टव्य है–

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते।

बीज बिना तरू जमे, मोहि तुम कहौ कहाँ तै।

इनकी रचना श्रोतिमधुर, मनोहारिणी और कोमलकान्त पदावली आधारित है।

गोविन्दस्वामी मूलतः राजस्थान प्रदेश के भरतपुर से थे। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। कृष्ण और ब्रज के प्रति इनके मन में अपूर्व अनुराग था। ब्रजभाषा की इनकी पंक्तियों में उक्त भाव–भंगिमा देख सकते हैं।

कहा करें बैकुण्ठहिं जाय।

जहँ नहिं कुंज लता अलि कोकिल मन्द सुगन न वायु सहाय।

गोविन्द प्रभु गोपी चरनन को ब्रजरज तजि वहँ जाय बलाय।।

छीतस्वामी स्वभाव से चंचल थे, किंतु उनमें ब्रज के प्रति मोहक लगाव और कृष्ण के प्रति अटल भक्ति थी। ब्रज भाषा में उनका भाव कितने सहज और गंभीर रूप से प्रस्तुत हुआ है –

हे विधना! ते सौं अँचरा पसारि माँगो।

जन्म–जन्म दीजो मोहि याही ब्रज बसियों।

चतुर्भुजदास अष्टछाप के अंतिम भक्त कवि हैं। इनकी कोई स्वतंत्र कृति उपलब्ध नहीं है। संगीत में इनकी विशेष रूचि थी। ये पूर्व रचित पंक्तियों की लयात्मक नकल पर कृष्णभक्ति के पद बना कर गाया करते थे।

मैया मोहि माखन मिश्री भावै।

मीठो दधि मधुधृत अपने कर क्यों नहीं मोहि खवावै।

इन पंक्तियों में 'सूर' के निम्नपद की अनुकरणात्मकता स्वतः प्रकट होती है।

''मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।

मोसो कहत मोल को लीन्हों तूं जसमति कब जायो।'' –सूर

कृष्ण भक्ति काव्यधारा में ब्रजभाषा के प्रयोग के विषय में डॉ0 कणिका तोमर ने अपने शोध–कार्य में लिखा है– ''पन्द्रहवीं शताब्दी में जो कृष्ण भक्ति का प्रवर्तन और प्रसाद हुआ, उसने बड़े व्यापक भाव से भाव–विस्तार किया और ब्रजभूमि कृष्ण भक्तों का केन्द्र बनी। यह भक्तिधारा आने वाली नई शताब्दियों तक काव्य रचना को प्रेरणा देती रही। इन भक्त कवियों में बल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों का स्थान काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इन्होंने एक अपूर्व साहित्य की सृष्टि की और ब्रजभाषा काव्य को एक अभिनव माधुर्य से परिपूर्ण कर दिया। उपर्युक्त दो सम्प्रदायों के अलावा गोस्वामी हित हरिवंश द्वारा प्रवर्तित राधास्वामी सम्प्रदाय और गोस्वामी हरिदास द्वारा वरही सम्प्रदाय का भी महत्व–साहित्य की दृष्टि से उल्लेख योग्य है। इन दोनों सम्प्रदायों के भक्तों और उनके शिष्यों ने ब्रजभाषा में काव्य–रचना की। यह परंपरा बहुत दिनों तक चलती रही। इसी के साथ सखी सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस सम्प्रदाय के भक्तों में सखी भाव की साधना है। सत्रहवीं शताब्दी के बाद के भक्ति साहित्य में सखी भाव की प्रधानता दिखाई पड़ती है।''

रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास का रामचरित्मानस अवधी भाषा में अवश्य है, किंतु कवितावली, गीतावली और विनय पत्रिका ब्रजभाषा में हैं। कवितावली में नवगमन प्रसंग की पंक्तियों में ब्रजभाषा का भावानुकूल स्वरूप दर्शनीय है।

सीस जटा पर बाहु विलास बिलोचन लाल तिरीछ सी भौहें।

तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं।।

सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यौं हमरो मन मोंहैं।

पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ सांवरे से सिख रावरे को हैं।।

ग्रामबधू के प्रश्नों के उत्तर में सीता का आदर्श रूप प्रस्तुत होता है। भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था और उनका चातुर्य, ब्रजभाषा और काव्य को भाव–गम्भीर रूप प्रदान करता है –

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने सयानी है जानकी जानी भली।

तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाइ कछु मुसकाइ चली।।

'गीतावली' की रचना से ब्रजभाषा को सुन्दर साहित्यिक आधार मिला है। यह तुलसीकृत ब्रजभाषा का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें भक्ति रस की तरंगिणी प्रवाहित होती है –

विनती भरत करत कर जोरे।

दीनबन्धु। दीनता दीन की कबहुं परै जिनि भोरे।

तुम्ह से तुमहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।

तौ प्रभु चरन सरोजसपथ जीवत परि जबहि न पै हो।।

विनयपत्रिका की कुछ चर्चित पंक्तियाँ उद्धृत हैं –

तू दयालु दीनहौं, तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी।

मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सो।।

श्रीकृष्ण गीतावली तुलसीकृत भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र पर आधारित एकमात्र रचना है यह विशुद्ध ब्रजभाषा ग्रंथ है। इसमें इकसठ पद हैं। कहा जाता है इस ग्रंथ की रचना तुलसीदास ने तब की, जब वे वृन्दावन की यात्राा पर थे। यह माधुर्यगुण सम्पन्न श्रेष्ठ कृति है –

कृष्ण पर यशोदा माता का क्रोध देख कर गोपियाँ निवेदन करती हैं –

खायौ, कै खवायो, कै बिगार्‌यौ ढार्‌यो लरिकारी,

ऐसे सुत पै कोह कैसो तेरा हियो है।

निश्चय ही भक्त–शिरोमणि तुलसीदास कृत रामचरित्मानस अवधी भाषा का अनुपम ग्रंथ है, तो कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका और श्रीकृष्ण गीतावली ब्रजभाषा की बहुमूल्य साहित्यिक निधि है। रीतिकाल के कवियों केशव, मतिराम, घनानन्द, रसखान, सेनापति और पद्माकर आदि ने ब्रजभाषा काव्य को पर्याप्त समृद्ध किया है। रीतिकालीन ब्रजभाषा के काव्य में शृंगार की प्रचुरता अवश्य है, किन्तु इसमें भक्ति, नीति, वैराग्य, ज्योतिष और आलौकिक प्रेम आदि विषयों को सुंदर अभिव्यक्ति मिली है। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इन प्रवृत्तियों की गतिशीलता दिखाई देती है। इस काल के कवियों ने संस्कृत ग्रंथों के आधार पर लक्षण ग्रंथों की रचना की है। उनकी लेखनी से रचित नायिका भेद की अनेक कृतियाँ प्रकाश में आई हैं। इन कवियों ने यत्र–तत्र राधा–कृष्ण का नाम लिया है, किन्तु शृंगारिकता का रंग पर्याप्त गहरा है।

केशव रीतिकालीन ब्रजभाषा के प्रथम और चर्चित कवि हैं। केशव संस्कृत के चर्चित विद्वान थे। इन्होंने छन्दों का अद्‌भुत प्रयोग करते हुए रस और अलंकार की आकर्षक विवेचना की है। रावण–अंगद संवाद में भुजंगप्रयास छनद का प्रयोग ब्रजभाषा को लयात्मक रूप प्रदान कर रहा है –

निक्‌रयो जु मैया लियो राज जाको,

दियो काढिंकै जू कहा त्रास ताको।

लिये बानराली कहौं बात तोसों,

सु कैसे बुरै राम संग्राम मोसों।।

संवादात्मक संदर्भ केशव के ब्रजभाषा–काव्य की अपनी विशेषता है। छोटे–छोटे वाक्यों में भावात्मक गंभीरता मनोहारी है।

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि? न जानिए?

काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखनिये।

है कहाँ वह? बीर अंगद देवलोक बताइयो।

रघुनाथ–बान–विमान बैठि सिधाइयो।।

बिहारी की बहुज्ञता सर्वविदित है। उनके दोहों की भाषा और भाव–गम्भीरता उनकी महत्ता को चरितार्थ करती है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कहा गया है –

''सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर''

बिहारी ने ब्रजभाषा में रचित सतसई के प्रथम दोहे में रीतिकालीन भक्ति भाव को संजोया है–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा रागरि सोइ।

जा तन की झाई परै, स्यामु हरित दुति होइ।।

बिहारी ने ब्रजभाषा के दोहे में मन की एकाग्रता में सफलता और प्रसन्नता निहित होने की बात आकर्षक रूप में कही है –

या अनुरागी चित की गति, समुझे नहि कोई।

ज्यों–ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों–त्यों उज्जलु होई।।

बाह्याडम्बर से बचने के लिए कवि ने कबीर की तरह निर्भय होकर संसार को सचेत किया है–

''जप माला छाया तिलक सरै न एकौ काम।

मन कांचै नाचै वृथा, सांचै–सांचै रामु।।''

कवि ने ब्रजभाषा के दोहे की दो पंक्तियों से राजा की अंतःचक्षु को खोजने का अनुकरणीय उद्‌बोधन किया है–

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल

अली कली ही सौं बन्ध्यो, आगै कौन हवाल।।

बिहारी संयोग श्रृंगार चित्रण में सर्वोपरि हैं। उनकी सशक्त लेखनी के एक ही दोहे में बहुआयामी चित्र प्रस्तुत हुए

हैं। बिहारी द्वारा काव्य–भाषा रूप में अपनाने से ब्रज भाषा पर्याप्त समृद्ध हो गई है –

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।

भरे भौन में करत है नैनन ही सों बात।।

घनानन्द रीतिकाल के स्वच्छन्द प्रेमधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचना में 'प्रेम की पीर' का हृदयस्पर्शी रूप है। ब्रजभाषा आधारित इनकी भावात्मक रचना से हिंदी साहित्य को एक नई दिशा मिली है –

अति सूधों स्नेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे पले तजि आपनुपौ, झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।

घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो यहाँ एकते दूसरों आँक नहीं।

तुम कौन धो पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पर देहु छटांक नहीं।।

इन पंक्तियों में ब्रजभाषा का उकार, ओकार, औकार, अनुनासिकता बहुल रूप में और 'से' कारक चिह्न के आकर्षक प्रयोग के साथ भाव–गंभीरता दर्शनीय है।

भूषण रीतिकाल के ऐसे ब्रजभाषी कवि हैं जिनकी कविता में जिजीविषा को आकर्षक अभिव्यक्ति मिली है। भूषण ने शिवाजी को हिन्दुत्व–रक्षक–रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवि के मन में अपने धर्म के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और धर्म–विरोधियों के प्रति गंभीर प्रतिक्रिया का वेग है। शिवाजी के लिए चुने गए अनगिनत उपमान इस भाव के प्रमाण हैं –

इन्द्र जिभि जंम पर बाडव सुअंम पर,

रावन सदम्भ पर रघुकुलराज हैं।

पौन बारिवाह पर सुंभु रतिनाह पर,

दावा द्रुम–दंड पर चीता मृगझुण्ड पर,

भूषण बितुंड पर जैसे मृगराज हैं।

तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,

यौं ग्लेच्छ बंस पर सेर विराज हैं।।

ध्वन्यात्मकता, अन्नप्रास अलंकार, छन्दबद्धता और आकर्षक लयात्मकता में वीर रस का अनुकरणीय प्रभाव ब्रजभाषा के भूषण–काव्य की अपनी विशेषता है –

भूषन सिवा जी गाजी खग्ग सों खपाए खल,

खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं।

खड़ग खजाने खरगोस खिलवत खाने,

खोसैं खोल खसखाने खूसत खबीस हैं।।

रसखान रीतिकाल के अनन्य कृष्ण भक्त हैं। उन्होंने सवैया छंद में ब्रजभाषा को सुंदर साहित्यिक रूप प्रदान किया है।

या लकुटी अरू कामरिया पर राज तिहूँ पुर की तजिडारौं।

कोटिक की कलधैंत के धाम करील के कुंजनि उपर बारौं।

आठौ सिद्ध नवौ निधि के नित नन्द की गाय चराय बिसारौं।।

रसखान को कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा है। भक्तिकवि ब्रज भूमि को पुण्यस्थली के रूप में याद करता है। वह तन, मन और धन सब कुछ अपने आराध्य पर न्योछावर करना चाहता है–

मानुष हौं तो वही रसखन, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पशु हों तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारना।

जो खग हो तो बसेरो कौ नित कालिंदी कूल कदंब की डारन।।

ठाकुर अपने काव्य में जीवन के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए जन–जन को प्रेरित करना चाहते हैं। इनकी ब्रजभाषा में सहजता और सुगमता का अनुकरणीय स्वरूप मिलता है–

दान दया बिन दीबो कहा अरू लीबो कहां जब आपुतें मांगे।

प्रान गए रस पीबो कहा पग छीबो कहा उर प्रेम न जागे।।

नीर कहा जहिलाज तजी, गुरू कीबो कहा भ्रम दूरि न भागो।

वा जग में फिर जीबो कहा जब आंगरी लोग उठावन लागी।।

रीतिकाल का रामकाव्य भी ब्रजभाषा में रचा गया है। गुरू गोबिन्द सिंह की 'गोबिन्द रामायण' में राम का आकर्षक वर्णन उद्धरणीय है–

भेंटि भुजा भर अंक भले भरि नैन दोउ निरखै रघुराई।

गूंजत भृंग कपोलन उपर नाग लवंग रहे लव लाई।

कुजं कुरंग कलानिधि के ही कोकिल हेरी हिये हहराई।

बाल लखै छवि खाट थरै नहिबाट चलै निरखै अधिकाई।।

ब्रजभाषा साहित्य की दृष्टि से आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेन्दु हरीश्चन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके साहित्य में एक ओर भाषा परंपरा का सुन्दर निर्वाह किया गया है, तो दूसरी ओर ब्रजभाषा को नया रूप भी मिला है। इस युग में ब्रजभाषा–साहित्य के अनेक प्रबन्ध एवं फुटकर काव्य लिखे गये हैं। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य को नई भस्वरता और भावसमन्विता प्रदान की है। इनके ब्रजभाषा साहित्य में राष्ट्रीय भावना के साथ कृष्णभक्त कवियों की भाँति कृष्ण–लीला और उनके प्रभाव का मनमोहक वर्णन है –

सखी ये नैना बहुत बुरे

तब तें भये पराये हरि सो जब ते जाइ जुरे।

मोहन के रूप में बस है डालत, तलफल तनिक बुरे।

मेरी सीख प्रीति सब छाड़ि, ऐसे ये निगुरे।

जग खीझयो बरज्यौ पे ये नाहिं, हठ सों तनिक मुरे।

अमृत भरे देखत कमलन–से, विष से बुते धुरे।।

इनकी रचना में बहुप्रचलित सरल शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसलिए इनकी भाषा बोधगम्य और सरल है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने ब्रज को काव्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है, तो खड़ी–बोली को गद्य–भाषा के रूप में अपनाया है। भारतेन्दु की राष्ट्रीयता और उनका हिंदी प्रेम प्रशंसनीय है–

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति की मूल।'

जगन्ननाथ दास रत्नाकर के समय तक खड़ी–बोली का प्रयोग तीव्रता से चल चुका था, किन्तु इन्होंने काव्य–रचना के लिए ब्रज भाषा को ही अपनाया है। रत्नाकर का ब्रजभाषा प्रेम ही उन्हें इसमें काव्य–रचना के लए प्रेरित करता रहा है। इस समय तक खड़ी–बोली काव्य भाषा का उपयोगी स्थान ले चुकी थी।

भेजे मन–भावन के उद्धव के आवन की,

सुधि ब्रज–गावनि में पावन जबै लगी।

कहै रत्नाकर गुवालिनी की झौरि–झौरि,

दौरि–दौरि नंद–पौरि आवन तबै लगीं।।

उझकि–उझकि पद पैजनि के पंजनि पै,

पेखि–पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी।

हमकौं लिख्यो हैं कहाँ, हमकौं लिख्यो है कहाँ,

हमकौं लिख्यो हैं कहाँ, कहन सबै लगी

रत्नाकर की ब्रजभाषा संस्कृतिनिष्ठ होकर समास बहुला बन गई है। इनके ब्रजभाषा साहित्य में अन्य ब्रजभाषा के कवियों के माधुर्य के स्थान पर ओज भाव विकसित हो गया है। 'गंगावतरण' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

कान्ह दूत कैंधों ब्रह्मदूत है पधारे आप,

धनि प्रन फेरत कौ मति ब्रजवासी की।

जैहैं जनि बिगरि न बारिधता बारिधि की

हैं बूंद बिस बिचारी की।।

बाबू गुलाबराय ने आधुनिक काल में ब्रजभाषा के प्रयोग–संदर्भ में अपना विचार 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास' में इस प्रकार व्यक्त किया ह– ''काव्य के विषय में परिवर्तन के लिए द्वार तो खुला, किन्तु काव्य की भाषा वही ब्रजभाषा रही, क्योंकि ब्रजभाषा ने साहित्य में ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया था कि उसको काव्य–भाषा के पद से च्युत करना कठिन था। रीतिकाल के आदर्श नायक–नायिका राधा–कृष्ण ही थे। इस नाते से रीतिकाल में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा। ब्रजभाषा प्रान्तीय भाषा न रही, वरन् साहित्य की व्यापक भाषा हो गई थी। कुछ काल तक तो ब्रजभाषा का ही साम्राज्य रहा, उसके पश्चात् धीरे–धीरे कुछ समय पश्चात् लोगों ने अपनी रूचि के अनुकूल अलग–अलग क्षेत्र चुन लिये।

मिश्रबन्धु हिंदी साहित्य के इतिहासकार ओर समीक्षक रहे हैं, किन्तु इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी–बोली दोनों में ही काव्य–सृजन किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल शुद्ध ब्रजभाषा को काव्य–भाषा के रूप में अपनाने वाले प्रमुख कवि हैं। इनकी काव्य–भाषा में माधुर्य का मोहक रूप मिलता है। 'मधुश्रोत' इनकी चर्चित काव्य रचना है। हिंदी भाषा और साहित्य

के विकास में ब्रजभाषा का योगदान सर्वोपरि है। भक्तिकाल में ब्रजभाषा का प्रयोग अवधी भाषा के साथ होता रहा है, जबकि रीतिकाल की काव्यभाषा ब्रज बन गई है। आधुनिककाल के प्रथम चरण अर्थात् भारतेन्दु युग में अनेक कवियों ने ब्रज को काव्य–भाषा के रूप में अपनाया है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने भी ब्रज को काव्य भाषा के रूप में अपनाया तो खड़ी–बोली को गद्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है। यह निर्विवाद तथ्य है कि भक्तिकाल से आधुनिक काल के भारतेन्दु युग तक की काव्य भाषा मुख्यतः ब्रज ही थी और उस समय का यह ब्रजभाषा रूप ही उस समय की हिंदी का मूल एवं मुख्य स्वरूप था।

2.4 साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी–बोली का उद्‌भव और विकास

खड़ी–बोली : नामकरण

हिंदी के सर्वमान्य स्वरूप को खड़ी–बोली नाम दिया गया है। हिंदी भाषा के इस स्वरूप की अनुकूलता अर्थात् खरेपर के कारण 'खरी–बोली' कहा गया और फिर 'खड़ी–बोली' नाम दिया गया। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि शब्द–भण्डार के प्रमुख वर्ग क्रिया की संरचना को नामकरण का आधार बनाया गया होगा अर्थात् हिंदी की समस्त क्रिया की रचना में अंतिम ध्वनि 'आ' की मात्रा 'ा' खड़ी पाई होती है; यथा–जाना, आना, धोना, खोना, चलना, फिरना, हँसना आदि। सभी क्रिया शब्द के अंत में 'ा' खड़ी पाई का प्रयोग है। इसी के आधार पर 'खड़ी पाई' का प्रयोग है। इसी के आधार पर खड़ी–बोली नामकरण की संभावना व्यक्त की गई है।

खड़ी–बोली : क्षेत्र

खड़ी–बोली का क्षेत्र मुजफ्फर नगर और दिल्ली के आसपास माना गया है। सर्वेक्षण के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि 'खड़ी–बोली' के रूप में प्रयुक्त हिंदी भाषा का रूप उक्त क्षेत्र के किसी भी गाँव में प्रयुक्त नहीं होता। गंभीर चिंतन करने से यह तथ्य सामने आता है कि हिंदी भाषा के विस्तृत क्षेत्र और उसकी विविधता देखकर जो एकरूपता देने का प्रयास किया गया, उसमें इस क्षेत्र की बोली को आधार बनाया गया है। 'खड़ी–बोली' का उक्त क्षेत्र वास्तव में पश्चिमी हिंदी की कौरवी बोली का क्षेत्र है। इस प्रकार खड़ी–बोली के विषय में कहा जा सकता है –''कौरवी बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की बोधगम्यता के लिए जो संकल्पनात्मक रूप विकसित हुआ, उसे खड़ी–बोली नाम दिया गया है।

खड़ी–बोली का प्रभाव धीरे–धीरे विस्तृत होता जा रहा है। वर्तमान में मेरठ, मुजफ्फर नगर, बिजनौर, सहारनपुर, हरिद्वार, गाजियाबाद, मुरादाबाद और दिल्ली तक देख सकते हैं। हरियाणा के करनाल, यमुना नगर, पानीपत, सोनीपत के कुछ भागों में खड़ी–बोली का स्पष्ट प्रभाव मिलता है।

खड़ी–बोली : उद्‌भव

हिंदी में गद्य–रचना के विकास–काल से खड़ी बोली का प्रभावी रूप में विकास हुआ है। आदि काल में डिंगल–पिंगल में रचना होती थी, तो मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा काव्य–रचना की आधार भाषा थी। आधुनिक युग में हिंदी का यही रूप साहित्य–सृजन का आधार बना है। हिंदी भाषा में एकरूपता और बोधगम्यता बढ़ाने का प्रयास एक लंबे समय से चल रहा था। जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य में खड़ी–बोली का प्रारंभिक रूप देख सकते हैं। संत कवियों की भाषा में खड़ी–बोली का प्रभाव सामने आता है।

''पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथ।
आगे ते सतगुरु मिला, दीपक दीया हाथ।''

इस दोहे में शब्दों का तद्‌भव रूप और कारक–चिह्नों का प्रयोग खड़ी–बोली के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। अमीर खुसरो के काव्य में खड़ी–बोली का प्रभावी रूप सामने आता है। डॉ0 भोलानाथ तिवारी, अमीर खुसरों को

खड़ी–बोली का प्रारंभिक और श्रेष्ठ कवि मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अमीर खुसरों को खड़ी–बोली में रचना करने वाले सहृद शुरूआती साहित्यकार की मान्यता दी है।

अकबर के दरबार के दरबारी कवियों में भी खड़ी–बोली की झलक रूप में दिखाई देती है। इन कवियों में 'रहीम' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

''एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।

रहिम सींचहि मूलहिं, फूलहिं फलहिं अधाय।''

सत्रहवीं शताब्दी में रचित जटमल कृत गोरा–बादल की कथा खड़ी बोली की पहली रचना मानी गई है। भक्तिकाल के गद्य में ब्रज, अवधी और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। रीतिकाल के गद्य पर ब्रज और फारसी का प्रभाव अवश्यमेव पड़ा है। राम प्रसाद निरंजनी कृत अट्ठारहवीं शताब्दी की भाषायोग वशिष्ठ खड़ी–बोली की प्रथम प्रमाणिक रचना मानी गई है। आचार्य शुक्ल ने रामप्रसाद निरंजनी को खड़ी–बोली का प्रौढ़ रचनाकार घोषित किया है। इनकी भाषा योग व शिष्य का एक गद्यांश अवलोकनीय है –

''जो पुरुष अभिमानी नहीं है, वह शरीर के इष्ट–अनिष्ट में राग–द्वेष नहीं करता। क्योंकि इसकी शुद्ध वासना है।'' इसी समय से खड़ी–बोली के प्रयोग की एक परंपरा बनी और साहित्य–सृजन की आधार बनी।

खड़ी–बोली : विकास

19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही खड़ी–बोली का प्रभाव विकसित हुआ। मुंशी सदासुख लाल और इंशा अल्लाह खाँ ने खड़ी–बोली को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की अनुप्रेरक भूमिका निभाई। सदासुख लाल की हिंदी सरल तथा वाक्य रचना छोटी–छोटी होने के कारण विशेष लोकप्रिय हुई। इनकी भाषा में सुंदर संप्रेषणीयता है। इंशा अल्लाह खाँ की 'रानी कोतकी की कहानी' ने अपनी लोकप्रियता के आधार खड़ी–बोली के स्वरूप को जन–सामान्य तक पहुँचाया। ये अपनी भाषा को सरल तथा शुद्ध रूप देना चाहते थे, किन्तु उनका चमत्कारिक और सौंदर्य प्रिय मन ऐसा न कर सका। इनकी भाषा में यत्र–तत्र मुहावरों के साथ हास्य–व्यंग्य के पुट मिल जाते हैं।

सन् 1803 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कलकत्ते में हुई। इस कॉलेज में जॉन गिलक्रास्ट हिंदी और उर्दू पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। इस कॉलेज में अंग्रेजी के साथ भारतीय भाषाओं के अध्यापन की भी व्यवस्था की गई। लल्लूलाल ने जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से वर्षों तक इस कॉलेज से जुड़कर शकुंतला, प्रेमसागर, बैताल, पचीसी, और सिंहासन बतीसी आदि कृतियों की रचना की है। इनकी रचनाएँ शुद्ध खड़ी–बोली में न होकर ब्रज अथवा उर्दू प्रभावित हैं। इनकी भाषा में संस्कृत के साथ अरबी, फारसी, ब्रज का प्रभाव है। इनके गद्य में काव्यात्मकता भी दिखाई देती है। लोकोक्ति और मुहावरों का यत्र–तत्र प्रयोग है। हिंदी के लगभग सभी कारक–चिह्नों– ने, से, को, का, के, की, में और पर आदि के प्रयोग मिलते हैं।

फोर्ट विलियम कॉलेज में कार्यरत लल्लूलाल के समैकालीन पं0 सदल मिश्र का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने नासिकेतोपाख्यान' और रामचरित' नाम से मशः 'कठोपनिषद्' और अध्यात्म रामायण' का हिंदी में अनुवाद किया। इनकी भाषा पर पूर्वी हिंदी का प्रभाव है, किन्तु तत्सम बहुला भाषा होने से खड़ी–बोली के विकास में एक सीमा तक सहयोगी सिद्ध होती है। इनकी भाषा में खड़ी–बोली के अनुरूप कारक–चिह्नों का प्रयोग है। ब्रजभाषा का वचन परिवर्तन रूप यत्र–तत्र मिल जाता है; यथा–बात (एक वचन) > बातन (बहुवचन)। भोजपुरी–अवधी शब्द भी कहीं–कहीं प्रयुक्त हुए हैं। इनकी रचना में छोटे–बड़े सभी प्रकार के वाक्य मिलते हैं। इनके वाक्य गद्यात्मक वाक्य–रचना सिद्धांत पर प्रायः शिथिल हैं, किंतु कर्ता, कर्म, क्रिया का क्रमशः प्रयोग मिलता है और गद्य में काव्यात्मक रूप नहीं है। हिंदी गद्य के विकास–आधार पर खड़ी–बोली को दिशा देने में 19वीं शताब्दी के इन लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन विशेष रूप उल्लेखनीय है।

''गद्य की एक साथ परंपरा चलाने वाले उपयुक्त, चार लेखकों में से आधुनिक हिंदी का पूरा–पूरा आभास मुंशी सदासुख लाल और सदल मिश्र की ही भाषा में मिलते हैं। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। इन दो में भी मुंशी सदासुख लाल की साधु भाषा अधिक महत्व की है। मुंशी सदासुख लाल ने लेखनी भी चारों से पहले उठाई। अतः गद्य का प्रवर्तन करने वालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए।''

ईसाईयों का खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान रहा है। अंग्रेजी शासन में ईसाई धर्म–प्रचार जोरों पर था। उनके द्वारा जन–जन तक ईसाई धर्म–साहित्य को पहुंचाने के लिए उसे खड़ी–बोली में अनुवाद किया गया। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर वेदांत–सूत्रों का खड़ी बोली में हिंदी भाष्य प्रस्तुत किया। ये राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी के प्रबल प्रेमी थे। इन्होंने सन् 1829 में 'बंगदूत' समाचार–पत्र का प्रकाशन कर हिंदी प्रचार–प्रसार में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक और राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़े सितारे हिंद राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह का नाम खड़ी–बोली प्रयोग–संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सितारे हिंदी राजा शिव प्रसाद उर्दू प्रभावित हिंदी अर्थात् हिंदुस्तानी के पक्षधर थे। उनकी चर्चित मुख्य रचनाएँ हैं– 'राजा भोज का सपना', 'मानव धर्मसार'। राजा भोज का सपना' में खड़ी–बोली का उपयोगी रूप है। राजा राजा शिव प्रसाद सिंह ने शिक्षा मं हिंदी को उचित स्थान दिलाने के लिए प्रयत्न किया। हिंदी शिक्षा की पुस्तकें लिखवाई। राजा लक्ष्मण सिंह खड़ी–बोली को श्रेष्ठ रूप देने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में आगरा से प्रजा–हितैषी' समाचार–पत्र का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' और 'मेघदूत' का खड़ी–बोली में अनुवाद किया। इनकी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

समाज–सुधारक नवीन चन्द्र राय ने उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में पंजाब में रह कर शिक्षा जगत् के विभिन्न पाठ्यक्रमों की पुस्तकें खड़ी–बोली में लिखीं और अपने साथियों से लिखवाई। पंजाब में ही श्रद्धाराम फुल्लौरी ने अपने मनमोहक स्वर में रामायण और महाभारत की कथा हिंदी में सुनाई। ओम जै जगदीश हरे. ...की ध्वनि से हिंदी का प्रचार हुआ।

महर्षि दयानन्द ने अपना व्याख्यान हिंदी में देकर खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार को बल दिया है। उन्होंने 'सत्यार्थ–प्रकाश' की रचना हिंदी में करके एक ओर समाज–सुधार आन्दोलन को जन–सामान्य से जोड़ा है, तो दूसरी ओर खड़ी–बोली के प्रयोग के सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। सन् 1875 में, बम्बई में आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द के द्वारा हुई। आर्य समाज से खड़ी–बोली प्रयोग को उत्तम आधारभूमि मिली है। आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेन्दु हरीश्चन्द्र हिंदी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने मुक्त कंठ से कहा है –

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूला,

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिअे न हिय को सूल।''

इनकी कविता में जनभाषा का स्वरूप अवश्य दिखाई देता है, किंतु उनके द्वारा रचित गद्य खड़ी–बोली के आधार पर सामने आता है। उनके रामकालीन साहित्यकारों ने खड़ी–बोली को गंभीरता से अपनाया है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने हिंदी प्रयोग में गति लाते हुए हिंदी को दिशा प्रदान की है। उन्होंने 1868 में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका, 1873 में हरीश्चन्द्र मैगजीन नामक मासिक पत्रिका निकाला। उसका नाम बाद में हरीश्चन्द्र चन्द्रिका हो गया। इसके बाद भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने खड़ी–बोली में अनेक नाटकों की रचना की और निबंध लिखे। खड़ी–बोली में अनेक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होनी शुरू हुई। पं0 प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, पं0 राधाकृष्ण गोस्वामी आदि ने साहित्य और पत्रकारिता में खड़ी–बोली को प्रतिष्ठित किया।

सन् 1893 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना से खड़ी–बोली के प्रचारार्थ सुदृढ़ आधार मिला। बाबू श्याम सुंदर दास और मदन मोहन मालवीय आदि हिंदी प्रेमियों से इस संस्था की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही है। इसके पश्चात् खड़ी–बोली प्रयोग में हिंदी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद; प्रार्थना सभा, बम्बई आदि साहित्यिक संस्थाओं के साथ ब्रह्म समाज आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि सामाजिक संस्थाओं का हिंदी–प्रेम विशेष महत्वपूर्ण रहा है।

हिंदी प्रचार–प्रसार में समय–समय पर प्रकाशित होने वाले पत्र और पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही है। इनमें कुछ प्रमुख हैं– उदन्त मार्तण्ड, बंगदूत, बनारस अखबार, 'प्रजा–हितैषी', 'कविवचन सुधा', 'प्रदीप सुधाकर, आदि। खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान मुद्रण–व्यवस्था का रहा है। जैसे–जैसे हिंदी–प्रेम बढ़ा, मुद्रण का आधार मिला, वैसे–वैसे हिंदी–प्रसार को गति मिलती गई है। खड़ी–बोली के माध्यम से सम्प्रेषणीयता का विकसित रूप सामने आया है। द्विवेदी युग से हिंदी–साहित्य सृजन मुख्यतः खड़ी–बोली में होने लगा।

''मानस भवन में आर्य जन जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती।। – गुप्त

छायावाद में प्रवेश कर खड़ी–बोली को आकर्षक रूप मिला।

''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक–दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।।''

– प्रसाद

इसके पश्चात् खड़ी–बोली हिंदी साहित्य–सृजन का आधार बन गई। वर्तमान समय में 'खड़ी–बोली' को हिंदी के पर्याय रूप में ग्रहण किया जाने लगा है। संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने हेतु हिंदुस्तानी (उर्दू मिश्रित हिंदी) और हिंदी (संस्कृत विकसित–परिनिष्ठित हिंदी) का विवाद चलता रहा है, किंतु इसका भी निश्चय अंत में– संविधान में हिंदी राजभाषा और देवनागरी उसकी लिपि बनी।''

वर्तमान समय में खड़ी–बोली की पर्याय बनी हिंदी (मानक हिंदी) न केवल भारत में प्रयुक्त हो रही है, वरन् गयाना, सूरीनाम, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, टुबैगो, फिजी, कनाडा और अमेरिका आदि देशों में प्रयुक्त हो रही है।